यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' के उपन्यासों में चित्रित दलित जीवन

[1]शैलेन्द्र गौड़, [2]डॉ. नवनीता भाटिया
[1]पीएच.डी. शोधार्थी, [2]सहायक आचार्य
ओ.पी.जे.एस विष्वविद्यालय, चुरू (राजस्थान)

सार संक्षेप

प्रकृति का नियम परिर्वतन है और स्वयं मनुष्य भी उसे परिवर्तित करता है। हर व्यक्ति अपने समाज की अर्थव्यवस्था, राजनीतिक स्थितियाँ, धार्मिक परिस्थिति तथा सांस्कृतिक परिवेश से सीधे प्रभावित होता है। प्राचीन काल से मानव समूह के रूप में रहता है। मनुष्य जब से आपस में बौद्धिक स्तर तथा शक्ति के स्तर पर विचारों का आदान–प्रदान करने लगा तब से मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण होने लगा। भारतीय समाज सदैव वर्ण व्यवस्था से आतंकित रहा है। ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने दलित समाज पर जो कहर ढहाया है वह सोचकर ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। दलित वर्गो ने अपने जीवन के अस्तित्व को बचाने के लिए सदैव संघर्ष किया है और आजादी के साठ साल बाद आज भी यह संघर्ष जारी है। दलित वर्ग पर उच्च वर्ग द्वारा शोषण के विविध पक्षों का अध्ययन करने के लिए तत्कालीन व्यक्ति, परिवेश तथा समाज का विवेचन करना जरूरी है। यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ने जीवन के विविध स्तरों पर जूझते दलित मानव का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। श्री 'चन्द्र' का अवतरण हिन्दी साहित्य में उस समय होता है जब आजादी के बाद जीवन के ढेरों सुनहरे सपने संजोए आम आदमी सड़कों पर घूमता नजर आता है।

चन्द्र जी के दलित विषयक उपन्यासों में चित्रित समाज

साहित्य की चाहे कोई भी विधा हो उसे सामाजिकता से सम्पृक्त रखना ही रचनाकार का उद्देष्य होता है। यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ने दलितों की सामाजिक समस्याओं के चित्रण को अपने अनेको उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। नीचली जाति के लोगों को अपनी बात तक कहने का हक नहीं था और उनके नामों का संबोधन भी कुछ इसी बात को इंगित करता है। प्रसिद्ध उपन्यास 'हजार घोड़ों का सवार' का कथन दृष्टव्य है – "हमीद खाँ ने आग्नेय नेत्रों से गीधू को देखा। इस चमार की यह हिम्मत कि वह म्युनिसिपैलिटी के जमादार हमीद खाँ को उपदेश दे। वह दाँत पीसकर बोला 'अरे ओ ढेढिया! एक डण्डे की मुँह पर मारूँगा तो बत्तीसी बाहर निकल आएगी। अपनी औकात देखकर बात किया कर। यह बात सुनकर गीधू ने भी जरा अकड़कर कहा – अपनी औकात चौखी तरिया जानता हूँ, ढेढ हूँ सो तो हूँ ही। मैं नहाने धोने से बामण तो नहीं बन सकता और आप पण्डित। पर आपको यह जरूर मालूम होना चाहिए कि हम भी माणस है, आदमी हैं। हमें भी इस धरती पर सुख का सांस लेने का हक है।"[1] श्री 'चन्द्र' ने दलित लोगों के चित्रण का गजब का संघर्ष दिखाया है। सामन्ती अत्याचारों में पिसती आम जनता के चित्रण में तो उनका एकाधिकार सा लगता है। रोजगार एवं जीवन अस्तित्व को बचाने के लिए आम आदमी जल से निकली मछली की तरह तड़प रहा है। श्री 'चन्द्र' ने सामन्ती समाज के विद्रूप चेहरे को अपनी आँखों से निहारा है।

श्री 'चन्द्र' ने राजस्थानी परिस्थितियों में जीवन के लिए संघर्षरत दलित का सुन्दर चित्रण किया है। राजस्थान की धरती ऐसी है जहाँ दूर–दूर तक बियाबान रेगिस्तान ही रेगिस्तान नजर आता है। 'जनानी ड्योढ़ी' उपन्यास में अकाल का एक चित्रण – "एक साल भयानक अकाल पड़ा था। नजर के आखिरी छोर तक प्यासी धरती परती की तरह बांझ लग रही थी। हरे–भरे सुन्दर पेड़ सूखकर नंगे और कुरूप हो गए थे। बेचारे पशु भूख प्यास में दुबले होने लगे। किसी किसी को रतौंधी का रोग हो गया।"[2] इसी उपन्यास में सामन्ती शासन से मजबूर व शोषित राजप्रासाद की जनानी ड्योढ़ी की पोल बताई है।[3]

चन्द्र ने अपने उपन्यासों में समाज में जाति एवं वर्ण व्यवस्था के महत्त्व को भी बताया है। वे कहते है कि व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है वही उसकी जाति रहती है। वैदिक समाज को श्रम विभाजन के निमित्त चार वर्षों में विभक्त किया गया था। कालांतर में इससे ही हजारों जाँतियां बन गईं। जातियां एक–दूसरे की तुलना में उँच और नीच हैं, एक ओर सबसे ऊपर धार्मिक रूप से पवित्र अथवा सर्वोच्च माने जानेवाली ब्राह्मण जातियाँ हैं। दूसरी ओर सबसे नीचे दलित श्रेणी की अपवित्र और अछूत कही जानेवाली जातियाँ हैं। इनके बीच अन्य सभी जातियाँ हैं जो सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से उच्च, मध्यम और निम्न श्रेणी में रख जा सकती है। हिंदू धर्म में समाज को ब्राह्मण, सामाजिक मर्यादा का अनुमान करने में इससे सुविधा होती हैं। "जब एक वर्ग, पूर्णतः वशांनुसंक्रमण पर आधारित होता है तो हम उसे जाति कहते हैं।"[4] जातियाँ एक–दूसरे की तुलना में उँच–नीच है। सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से हमने इनका पालन किया है, लेकिन इसके आड़ में अनैतिक संबंध रखने में उच्च जातियों के लोग हिचकिचाते नहीं। 'मोह–भंग' उपन्यास में समर को उनकी नौकरानी खुद को राजपूत घराने की बताकर कहती है कि – "हम खानदानी हैं। क्षत्रिय हैं। दूसरी जाति में शादी करने पर मेरा शराबी बाप व भाई मेरा कत्ल कर देंगे। बाबूजी! मेरी शादी मेरी जाति में ही होगी। समाज–धर्म और परिवार की बात है न? आप बुरा न मानिएगा। वैसे आप भी मुझे अच्छे लगते हैं। मैं आपको प्यार कर सकती हूँ पर शादी नहीं।"[5] जात–पात के कारण उंची जाति के लोग निचली जाति से प्यार कर सकते हैं, लेकिन शादी से मुकर जाते हैं।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' जी के बहुचर्चित उपन्यास 'हजार घोड़ों का सवार' में सामाजिक छुआछूत प्रथा कितनी गहरी थी, इसका सटिक चित्रण मिलता है। उपन्यास में दलित सांसद सदस्य गीधू अकाल दौरे पर जा रहे थे। इसी समय सड़क दुर्घटना में एक बुढ़ा चौधरी लहुलुहान अवस्था में पानी मांग रहा था, तभी गीधू उसे पानी देने के लिए चला जाता है, तब चौधरी का बेटा अपनी आखरी सांसे गिन रहे पिता से कहता है कि – "बापू...बापू! क्या तुम चमार के हाथ का पानी मरते समय पिओंगे? ... बोलो बापू...बोलो! चौधरी ने गर्दन हिलाकर कहा, नहीं... नहीं... ।"[6] यही पर चौधरी की मृत्यु होती है। लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से दिखाया है कि स्वतंत्रता के पश्चात भी देश में छुआछूत परंपरा को लोग अपनी जान से भी अधिक महत्त्व देते हैं। 'पराजिता' उपन्यास में सेठानी भगीरथी अपनी दलित नौकरानी कंवली नाईन को कुछ देते समय उसे छूती तक नहीं। "उसने कमरे के बाहर चौखट के समक्ष गिलास रख दिया। सेठानी ने ऊपर से उसके गिलास में चाय डाल दी।"[7] राजस्थानी समाज का चित्रण करते समय लेखक ने उस समाज की छुआछूत की प्रथा पाठकों के सामने प्रस्तुत इसी प्रथा की भयानकता पर प्रकाश डाला है।

इस प्रकार सामंती व्यवस्था सामाजिक सिद्धांतों पर आधारित समाज की संरचना है। जाति–पाँति की समस्या व्यक्ति और समाज के लिए बाधा बन गई है। समाज में निचली जाति के लोगों को हीन समझा जाता है। लेखक ने दलित विषयक उपन्यासों में सामाजिक व्यवस्था का यथार्थ चित्रण किया है।

चन्द्र जी के दलित विषयक उपन्यासों में चित्रित आर्थिक स्थिति

प्राचीन काल से चार पुरुषार्थ माने गए हैं। उनमें एक अर्थ को भी महत्त्व दिया गया है। युगों से मानव अर्थ के आधार पर ही चलता रहा है। प्राचीन काल से सामंती व्यवस्था का ऐष्वर्यशाली भव्य महल शोषण की नींव पर टिका हुआ दिखाई देता है। इन सामंत लोगों के भोग विलास के लिए आवश्यक प्राथमिक माध्यम धन ही रहा है। इस धन की प्राप्ति के लिए निर्धनों का शोषण करने का काम सामंतों (धनिक) ने किया है। "दास–युग से इस प्रथा का जन्म होता है जिसने लगान की स्थिति पार कर वर्तमान में मजदूरी और रिष्वत का रूप ले लिया है। आधुनिक

सामंतों में भूतपूर्व जमींदार, नेता, पूँजीपति एवं अफसर वर्ग, सभी अपनी–अपनी स्थिति के अनुकूल शोषण में व्यस्त हैं।"[8] इस आर्थिक विषमता के कारण ही समाज शोषक–शोषित (धनी और निर्धन) वर्ग में बंट गया। इन वर्गों की समस्याओं को यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

'गुलाबड़ी' उपन्यास की नायिका 'गुलाबड़ी' है, जो सेठानी के घर में नौकरानी का काम करती है। एक बार सेठानी की बह गुलाबड़ी को फटकारती है। इससे सेठानी अपनी बहू को नसीहत देती है कि– "बीनणी! कुछ सहकर ज्यादा पा लेना ही बुद्धिमानी है। तू बनिये की बहू है, यदि तुझे नफे नुकसान का पता नहीं होगा तो तू बनिया कहलाएगी ही नहीं! जरा सोच, रोटी, कपड़े और थोड़े से रुपयों के बदले इतनी कामेड़ी (कर्मठ), ईमानदार, हाथ की खरी, नीयत की साफ आदमण कहाँ मिलेगी? इसने सारी हवेली को सँभाल रखा है। गधी जितना काम करती है ऐसी दूसरी आदमण हमें नहीं मिलेगी।"[9] इस कथन से मारवाड़ी समाज के लोगों द्वारा निचली जाति के आर्थिक शोषण पर प्रकाश डाला गया है।

'प्रजाराम' उपन्यास में दलित मजदूरों की आर्थिक विपन्नता को दर्शाया है। महंगाई के कारण मिल मजदूर हड़ताल करते हैं और इस हड़ताल को मालिक अवैध करा देता है। "हड़ताल गैरकानूनी घोषित कर दी गई और मजदूरों का आठ दिनों का वेतन काट लिया गया है।"[10] मजदूरों का वेतन काटने के लिए मालिक वर्ग की यह कूटनीति है। इसी उपन्यास में सीमेंट व्यवसाय के काले धंधे को उजागर किया है। 'ठकुराणी' उपन्यास में गरीबी के कारण भीखली छः दिन भूखी होने से आत्महत्या करती है, इस कुछ समय पहले उनकी लड़की भूख से दम तोड़ देती थी। शिव को चमेली अपनी सहेली मीखली के बारे में कहती है – "बेचारी छः रोज से भूखी थी। अन्न का एक दाना भी उसके मुँह में नहीं गया। थोड़ा–बहुत माँग कर संचय किया, इससे वह अपनी तीन साल की बच्ची को दो–तीन दिन तक पालती पोषती रही। आज दोपहर से उसकी लड़की की दशा खराब होती गई। रोते–रोते वह अचानक चुप हो गई।"[11] उच्च वर्ग अनवरत रूप से अपनी स्वार्थ एवं कामवासना की पूर्ति हेतु नीच जाति के लोगों सदैव तिरस्कार करता रहता है।

समाज का सदस्य होने के कारण प्रायः प्रत्येक समाज द्वारा हर दिन नियमों का पालन करना आवश्यक है। इनका परिपालन करने में सफल नहीं रहे तो समाज की उपेक्षा सहनी पड़ती है। परंपरा तोड़ने पर दलित वर्ग को जाति से बहिष्कृत किया जाता है। 'ठकुराणी' उपन्यास में आर्थिक स्तर के दलितों के शोषण को चित्रित किया है। देहातों में जमींदार अपनी पूँजी और आतंक के बल पर दलितों का शोषण करते थे। 'ठकुराणी' उपन्यास में जमींदार दामोदर की बेटी का विवाह था जिसके लिए उसका सारा खर्च गाँव को देना पड़ता। 'नैना' इस पर कहती है – "जमींदार साहब की बेटी का विवाह है। परम्परा से उसका सारा खर्च हमें ही देना पड़ेगा, पर जमींदार साहब हम किसानों से आधा ही लेंगे। इसलिए हमें भी उन्हें 50 रुपये देने हैं।"[12]

दलितों के शोषण की एक ऐसी भी स्थिति है, जहाँ लोग अपने आश्रितों को आर्थिक लाभ तो पहुँचाते हैं, लेकिन नैतिक और चारित्रिक स्तर पर शोषण करते हैं। 'ढोलन कुंजकली' उपन्यास का सेठ 'किरपाचंद' पूँजी के बल पर लोगों को कर्ज देता है। कर्ज न चुका पाने से उसके बेटियों को उठाकर उनसे शादी करता है। उपन्यास की नारी पात्र 'गुलाबड़ी' कहती है – "मैं जानती हूँ इस चांडाल को। पाँवों से लाचार है। पर फिर भी इसके तीन–तीन बीवियाँ हैं। सुना है तीनों लुगाइयों के बाप इसके करजदार थे।"[13] सेठ 'किरपाचंद' साहुकार था। अपंग होकर भी आर्थिक शोषण करके तीन बीवियों का पति बन गया था। अतः यह पात्र आर्थिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध व्यक्ति है।

वह जनहित के नाम पर गाँव के लोगों को कर्ज देता है, उसके प्रभा मंडल के भीतर वासना का कलुसित कलंक भी विद्यमान रहता है। गाँव की औरतों का नैतिक और चारित्रिक रूप से शोषण करता है।

इस प्रकार उच्च वर्गो ने अपनी आर्थिक संपन्नता के लिए निर्धन, दलित, गरीब, श्रमिकों का आर्थिक शोषण करने का काम किया है। यादवेन्द्र शर्मा 'चंद्र' ने आर्थिक शोषण का आलोच्य उपन्यासों में सूक्ष्मता के साथ यथार्थ चित्रण किया है।

चन्द्र जी के दलित विषयक उपन्यासों में चित्रित राजनीति

चन्द्र जी के उपन्यासों में राजनीतिक चिन्तन पर भी विचार किया गया है। आजादी के बाद अधिकारों की आस लगाए बैठे करोड़ो भारतीय के सपने चकनाचूर हुए। यहां तक कि अवसरवादी खद्दरधारियों ने आम आदमी को राजनीति की बारहखड़ी तक नहीं पढ़ने दी। यहां तक कि श्री 'चन्द्र' ने स्वयं स्वीकार किया है कि इतना कुछ होने के बाद भी किसी को राजनीति में 'हिट' अथवा फ्लॉप' करना तो आखिर जनता के ही हाथ में है। चन्द्र के उपन्यास 'एक और मुख्यमंत्री' का कथन है – "जनता जिसको अपनी नजर में गिरा देती है, उसे उठने नहीं देती और राजनीति जिसे छोड़ देती है उसे वापस नहीं अपनाती। सच, राजनीति एक वासनालिप्त नारी है, पकड़ती है तो बाहों में भरकर और फेंकती है तो खुजलाये कुत्ते की तरह।"[14] इस एक ही उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि लोकतन्त्र की वास्तविक सत्ता वोट देने तक अथवा कहें कि चुनावों के दौरान तो जनता के हाथ में होती है परन्तु चुनावों के बाद सत्ता चन्द राजनेताओं के हाथ में होती है, जहां वोटर के लिए कोई स्थान नहीं होता।

कहते है कि 'चन्द्र' मार्क्सवादी विचारधारा से पूरी तरह से प्रभावित है। यहाँ सामन्तवाद के विरूद्ध तो जनता खड़ी ही है राजनेताओं के खिलाफ भी आम जनता खड़ी होकर सत्ता परिवर्तन का मुद्दा रखती है। श्री 'चन्द्र' ने अपने उपन्यासों में जिन खतरों की ओर संकेत किए है, वे आज घटित हो रहे हैं। राजनैतिक विडम्बनाएँ, विषमताएँ, क्रूरताएँ, घिनौने स्वार्थ और रक्तरंजित स्थितियां इन उपन्यासों में स्वाभाविक रूप से चित्रित हैं। विश्लेषित हैं, राजनीति के बौने और घटिया हथकण्डे। साथ ही साथ साम्राज्यवाद और मजदूरों के शोषण और विद्रोह का भी यथार्थ चित्रण श्री 'चन्द्र' ने अपने उपन्यासों में खुले मन से किया है।

वैसे तो श्री 'चन्द्र' ने अनेक उपन्यासों में राजनीतिक स्तर पर शोषित आम आदमी का चित्रण किया है परन्तु पूरी तरह से राजनीति पर ही केन्द्रित उपन्यास है 'प्रजाराम' और 'एक और मुख्यमन्त्री'। प्रजाराम एक विशेष प्रकार का राजनीतिक उपन्यास है जो राजनीति के दावेदारों की व्यवस्था के तहत पिसते आम आदमी के मार्मिक सवालों को प्रस्तुत करता है। श्री 'चन्द्र' ने 'प्रजाराम' उपन्यास में नायक के माध्यम से ऐसे प्रशासन को जड़ से उखाड़ फेंकने की अपील भी की है –"तुमने हरिजनों, दलितों, अल्पसंख्यकों और जातिवाद के नाम पर लम्बा राज्य कर लिया है। वोटों की हिंस्र और निर्दयी राजनीति के तहत तुमने देश की विराटता को लघु कर दिया और आदमी को बांट डाला। आदमी बंटकर अपनी वास्तविक शक्ति और ऊर्जा को भूल गया है। मगर अब प्रजाराम पागलों की तरह चीख–चीखकर कहेगा ये सत्ताधारी पार्टियां देश को टुकड़ों में बांटकर छोटे–छोटे घर बनाना चाहती है। इनके लिए देश एक तिजारत का साधन है इनके लिए शत–प्रतिशत प्रजा शोषण की चीज है ये सामन्ती राजाशाही संस्कृति के टुकड़खोर अपने व्यक्तित्त्व के निर्माण करने में हजारों व्यक्तियों को नेस्तनाबूद कर रहे हैं। इन आदमखोरों और हत्यारों से देश को बचाओ। ये राज्य सत्ता और पूंजी की दोगली संतान एक दिन हमें जाति, धर्म, सभ्यता ओर संस्कृति के नामों से ठगकर हमारी मनुष्यता को मगरमच्छ की तरह निगल जायेंगे। इन्हें सत्ता व्यवस्था से निर्वासित कर दो।"[15]

वर्तमान समय में राजनीति में उन्हीं लोगों का दबदबा है जो पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। राजनीति भ्रष्टाचार का पर्याय बन गई है। श्री 'चन्द्र' का प्रसिद्ध उपन्यास 'एक और मुख्यमन्त्री' घिनौनी राजनीति का चित्रण करने वाला एक अनूठा उपन्यास है। उपन्यास का नायक महत्त्वाकांक्षी युवक है और अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए ही वह राजनीति में प्रविष्ट होता है – "मैं नेता के लिए ही हूँ, पढ़कर मुझे हंसी आयी। शायद तुम्हें यह पता नहीं कि आज का यह नेता शब्द कितना स्वार्थी अवसरवादी और बेईमान होता जा रहा है? यह श्रद्धा से पूजा जाने वाला शब्द जनता–जनार्दन की दृष्टि में एक दिन घृणा का परिचायक हो जायेगा। फिर भी मैं बहुत महत्त्वाकांक्षी हूँ, अतः मुझे इस 'नेता' शब्द के पीछे जितनी भी बुराईयां छिपी हैं और बाद में करनी होगी, स्वीकार है।"[16]

इस उपन्यास में कुर्सी हथियाने के लिए रिष्वतखोरी, धोखाधड़ी तथा दोगली–नीति को अपनाने की बात को प्रकट किया है– "अरविंद मुख्यमंत्री; अरविंद एक और मुख्यमंत्री; अरविंद एक और, और मुख्यमंत्री! कितने रंगों का वह मुख्यमंत्री बना और अब भी है। उसका दृढ़ विष्वास है कि उसकी इच्छा और स्वीकृति के बिना अब कोई भी सैकड़ों घंटों का ही मुख्यमंत्री बन सकता है।"[17] उपन्यास का नायक अरविंद मुख्यमंत्री बनने के लिए गलत हथकड़ों को अपनाता है। सत्ता के कारण उसका व्यक्तित्व अहम् बन गया है। स्वयं तिकड़मी चाल चलकर मुख्यमंत्री बनना चाहता है जिसके लिए राजनीति में अनैतिकता का प्रयोग करता है।

इस प्रकार श्री 'चन्द्र' ने समकालीन सन्दर्भ में राजनीतिक दांवपेचों और उठा–पटक का यथार्थ और सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है।

चन्द्र जी के दलित विषयक उपन्यासों में चित्रित धर्म

चन्द्र के उपन्यासों में दलितों के जीवन संघर्ष के विभिन्न आयामों की अन्तिम कड़ी के रूप में हम धार्मिक स्तर पर प्राचीन मान्यताओं, विश्वासों, अंधविष्वासों और अनेक प्रकार के आडम्बरों में जीते आमजन के चित्रण का अध्ययन करेंगे। "लोकजीवन पर धर्म की पकड़ आज कम्प्यूटर के युग में भी मजबूत है। धर्म की यह पकड़ दो रूपों में दृष्टव्य है। एक ओर बाह्याचार पाखण्ड आदि से युक्त धर्म का स्वरूप है, जो मुख्यतः अभिजात वर्ग और बुर्जुआ वर्ग की तथाकथित संस्कृति का अंग है। दूसरी ओर धर्म का वह स्वरूप है, जो जन साधारण के 'अभ्युदय' और 'निःश्रेयस' में अपनी मौन भूमिका निभाता रहा है।"[18]

धर्म के इन दोनों स्वरूपों का चित्रण बार बार श्री 'चन्द्र' ने अपने उपन्यासों में किया है। श्री 'चन्द्र' दिखाना चाहते हैं कि सदाचार ईष्वर उपासना और परोपकार आदि के केन्द्र माने जाने वाले मठो का वास्तविक रूप क्या है? इस समस्या को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। श्री 'चन्द्र' का प्रसिद्ध उपन्यास 'संन्यासी और सुन्दरी' मे व्यक्त किया है कि "उन्होंने निर्णय किया कि वे धर्म संघ में जाकर महास्थिवर से प्रार्थना करेंगे कि संघ में नारी प्रवेश की एक कठोर मर्यादा बना दी जाये। अन्यथा काल के गर्भ में निहित भयानक दावानल महाप्राण के महामन्त्र का विनाश कर देगा। संघों में ये तथाकथित भिक्षुणियां शील और संयम के स्थान पर अनाचार और व्यभिचार का विस्तार करेंगी।"[19]

परमार्थ का स्थान शुद्ध स्वार्थ ने ले लिया है और महन्त आदि परलोक सुधारने के बजाय इसी लोक के सारे सुख भोग लेने के लिए कृत संकल्प हैं। धर्म का एक सकारात्मक पक्ष यह रहा है कि वहाँ भक्ति या उपासना के स्तर पर समानता की बात कही गई है। 'जातपाँत पूछे नहीं कोई। हरि का भजै सो हरि का होई' यह मध्यकालीन

भावबोध आज संकीर्णता ग्रस्त हो चुका है। बड़े–छोटे का भेद सम्पूर्ण तीक्षणता के साथ हमारे सामाजिक जीवन का नासूर बन गया है। धार्मिक संस्थाएँ और धर्म पुरूष इस भेद का विरोध करना दूर इसे प्रश्रय और प्रोत्साहन देती देखी जाती है, ऐसी स्थिति में दलितों का यह यह सोचना कि धर्म परिवर्तन से वे हीनता मुक्त हो सकते है, अमनोवैज्ञानिक नहीं है। श्री 'चन्द्र' के उपन्यास 'हजार घोड़ों का सवार' का गीधू इस सम्बन्ध में यूं ही उग्र नहीं है – "जो धर्म हमारी खुशी को मिटाता हो, हमारा खून पीता हो, हमें कुत्ते से बदतर जिन्दगी जीने के लिए बाध्य करता हो, उस धर्म में रहने से क्या फायदा।"[20]

सामाजिक मान्यता प्राप्त पवित्र विष्वास ही धर्म है, जो मानव समाज को अपनी पूर्व पीढ़ियों से सामाजिक विरासत के रूप में प्राप्त हुए है। समाज में प्रचलित अंधविष्वास, रूढ़ि–परंपरा, अंधश्रद्धा, मंत्र–तंत्र, देवी–देवताओं को पूजना आदि धार्मिक मान्यताओं तथा मनुष्य जीवन पर असर करते हैं। 'ढोलन कुंजकली' उपन्यास में धर्म के बारे में लिखते हैं– "धरम तो बड़े आदमियों की चीज है। अपने लिए तो सबसे बड़ा धरम है– इस मादरकाढ़ पेट की लाय को बुझाना"[21] ठाकुर तथा सामंत के लिए धर्म महत्त्वपूर्ण चीज है लेकिन निचली जाति के लिए धर्म सिर्फ एक ढकोसला है।

धर्म के नाम पर साधुओं की ओर से चल रही गलत कर्म पर लेखक ने प्रहार किया है। ब्राह्मण लोग धर्म के नाम पर गाय का पालन करते हैं लेकिन उसके पेट का ख्याल नहीं करते। 'मरु–केसरी' उपन्यास में दुर्गादास गाय की दुर्बलता को देखकर पंडितजी से कहता है– "पंडितजी! आप ब्राह्मण हैं, गो–भक्त हैं। जरा अपनी गाय को देखिए... कितनी दुर्बल और रूग्ण है। पसलियाँ गिन लीजिए। गुजर हनीफ खाँ की गायों को देखिए, कितनी स्वस्थ और प्यारी हैं। आप ब्राम्हण हैं और हनीफ मुसलमान पर गायें उसकी ही तंदुरूस्त और अच्छी हैं।"[22] पुरोहित वर्ग धर्म के नाम पर बाह्याडंबर कर लोगों को धर्म की दुहाई देते हैं। सही धर्म का पालन करते हुए दिखाई नहीं देते।

'मोह–भंग' उपन्यास का पात्र सोम एक लेखक है। सोम की जिंदगी अभावग्रस्त है फिर भी वह आनंद के साथ जीता है और दूसरा पात्र धनेश जो अमीर होने के बावजूद जिंदगी का आनंद नहीं उठा सकता। उसकी ऐय्याशी प्रवृत्ति पर सोम चिंता व्यक्त करते हुए कहता है–"जब आदमी के पास अपने अपराध की सफाई के बारे में कोई ठोस प्रमाण नहीं होता तो वह धर्म–कर्म और पूर्वजन्म का सहारा लेता है।"[23] आदमी अपने अपराध की सफाई नहीं दे सकने पर धर्म की दहाई देता है।

इस प्रकार श्री 'चन्द्र' के उपन्यासों में दलित लोकजीवन की विभिन्न झांकियों का सुन्दर चित्रण है। श्री 'चन्द्र' ने विशेष रूप से सामन्ती मूल्यों के विरूद्ध लिखने में अपार सफलता हासिल की है। दलित निचली जाति के लोगों को धर्म का डर दिखाकर गलत काम करने के लिए प्रवृत्त करने वाले सामंत वर्ग क प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है।

निष्कर्ष

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ने अपने उपन्यास साहित्य में दुर्बल, दलित, शोषित पात्रों के द्वारा उच्च वर्ग की गलत प्रवृत्तियों के विरोध को अभिव्यक्त किया है। 'चन्द्र' के उपन्यास वर्ग विषमता की समस्याओं को बेबाकी से प्रस्तुति देकर वर्गहीन समाज की जरूरतों को महसूस करते है, जो वर्ग विषमता की समस्या को मिटा सके। समाज में उच्च वर्ग भोग की ओर बढ़ रहा है। उसकी सोच में दलित वर्ग की कोई इज्जत नहीं है। पराई नारियों पर अत्याचार करना उनका दिनक्रम है लेकिन आधुनिक नारी की सोच बदली है। वह अपने परिवार की गलत हरकतों

का विरोध कर रही है। गलत मान्यताओं को तोड़ रही है। पति को परमेष्वर मानने वाली नारी भी पति को कुचलवाने में कोई कसर नहीं छोड़ रही है। चन्द्र के उपन्यासों में जमींदार, सामंत वर्ग के शोषण की प्रवृत्तियाँ और किसानों की बदतर स्थिति को रेखांकित किया गया है। सामंत वर्ग के लिए धर्म दिखावा की चीज है। ये लोग धर्म के नाम पर कर्मकांड की नीति चला रहे हैं। निचली जाति के लोगों को धर्म का डर दिखाकर गलत काम करने की प्रवृत्ति उच्च वर्ग में दिखाई देती है। सामंतों ने अपनी आर्थिक संपन्नता के लिए निर्धन, दलित, गरीब, श्रमिकों का आर्थिक शोषण करने का कार्य किया है। मिल मालिकों ने दलित मजदूरों की हड़ताल को अवैध करार देकर उनका वेतन काटने की प्रवृत्ति प्रकाश डाला है। यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ने अपने उपन्यासों के जरिए उच्च वर्ग की गंदी राजनीति को बखूबी चित्रित किया है। कुर्सी के लिए गलत हथकड़ों को अपनाना, रिष्वतखोरी, वोटों के लिए लालच दिखाना आदि प्रवृत्तियों को चित्रित किया है। इस प्रकार दलित वर्ग के जीवन में उत्पन्न समस्याओं का यथार्थ एवं सूक्ष्म चित्रण करने में उपन्यासकार सफल हुए हैं।

संदर्भ सूची

1. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – हजार घोड़ों का सवार, पृ. 16
2. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – जनानी ड्योढ़ी पृ. 4
3. श्री 'चन्द्र' – जनानी ड्योढ़ी पृ. 12
4. मोतीलाल गुप्ता – भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ. 59.
5. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – मोह–भंग, पृ. 122
6. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – हजार घोड़ो का सवार, पृ. 339
7. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – पराजिता, पृ. 13
8. विजयकुमार अग्रवाल, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में सामंती जीवन, पृ. 188.
9. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – गुलाबड़ी, पृ. 55
10. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र' – प्रजाराम, पृ. 128
11. यादवेन्द्र शर्मा 'चंन्द्र, ठकुराणी, पृ. 11
12. वही, पृ. 38.
13. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, ढोलन कुंजकली, पृ. 77.
14. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – एक और मुख्यमन्त्री, पृ. 44
15. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – प्रजाराम, पृ. 159
16. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – एक और मुख्यमन्त्री, पृ. 27
17. वही, पृ. 383
18. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ – हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में मूल्य संक्रमण पृ. 134
19. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – संन्यासी और सुन्दरी, पृ. 83
20. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – हजार घोड़ों का सवार, पृ. 184
21. वही, पृ. 66
22. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – मरु–केसरी पृ.46.
23. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – मोह–भंग पृ. 98